तृतीय अध्याय

'विवेच्य नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना'

तृतीय अध्याय

विवेच्य नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना"

प्रास्ताविक--

चंद्रगुप्त विद्यालंकार एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं । उन्होंने कहानी, नाटक ,एकांकी, संस्मरण तथा जीवनी आदि विधाओं में लेखन किया । उनके साहित्य में अपने देश की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा से लेकर आधुनिक भारत के सांस्कृतिक , सामाजिक, राजनीतिक पहलूओं तक के दर्शन होते हैं । राष्ट्रप्रेमी होने के कारण उन्होंने राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को सामने रखा है और प्राचीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदर्श का गौरवगान करके अपनी उज्ज्वल प्राचीन परम्परा की याद दिलायी है ।

उनका साहित्य हमेशा बोधपरक रहा है । जगरूक नागरिकों का कर्तव्य है कि अपने देश के प्रति वफादार रहकर उसका आदर करें और देश के विकास के लिए प्रयत्नशील रहे । यह उनके साहित्य में से संवेदना-बोध हमें मिलता है । साहित्य से समाज चेताया जाता है । "छोटे बड़े दायरे", संस्मरण संग्रह में विद्यालंकारजी लिखते हैं -- " भावनात्मक स्तर पर हमारा देश जैसे बिखरता-सा गया है । मैं यह अवश्य निवेदन करना चाहुँगा कि देश को इस स्थिति से छुटकारा दिलवाने का काम भी भारत के लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवी ही कर सकते हैं ।"[1] लेखक कहना चाहते हैं कि साहित्य समाज की निर्मिति करता है ।वे साहित्य के द्वारा समाज में राष्ट्रीय भावना का संचार करना चाहते हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास का गहरा अध्ययन किया है । उन्हें एक राष्ट्र तथा राष्ट्रीय एकात्मता पर भरोसा है । इसलिए उस पर उन्होंने ज्याद बल दिया है । इसी एकात्मता ने भारत का सम्मान बचाए रखा हे । प्राचीन भारत का महासाम्राज्य भी उनकी दृष्टि में आज के एकसंघ भारत का आदर्शस्थान है । उनका कहना है कि पहले साम्राज्य इसलिए प्रस्थापित किया जात था कि विदेशी

---

1 "प्रकर" पत्रिका, पृष्ठ -16, डॉ. महावीरसिंह चौहान के लेख" छोटे बड़े दायरे की समीक्षा" से उद्धृत- ।

आक्रमण को थोंप्ने के लिए अपनी ताकत को बढ़ा दिया जाए । यही साम्राज्य उनकी दृष्टि में राष्ट्रीय एकात्मता के लिए किया अंतर्गत संघर्ष है। यह एक अलग प्रकार की राष्ट्रीय संवेदना है ।

उनकी राष्ट्रीय संवेदना को हम अनुभूत करते हैं । इसी अनुभूति का नाम संवेदना है । देश में गहरी भावनात्मक एकता का प्रसार हो जायें यह प्रेरणा उनकी राष्ट्रीय संवेदना के पीछे कार्य कर रही है । उनकी राष्ट्रीय संवेदना को एक देशप्रेमी अपने संवेदनशील हृदय से ही जान सकता है । विद्यालंकार जी का समय गुलाम भारत और स्वतंत्र भारत इनके बीच में गुजरा है इसीकारण उनमें देशप्रेम या राष्ट्रीय संवेदन की गहरी अभिव्यक्ति मिलती हे ।

जब भी वेदना होती है तब ज्याद संवेदना है । यही बात देश के बारे में भी है। जब भी समस्या, संघर्ष, अन्याय होता है तब संवेदन्क्षम समाज में संवेदना की लहर दौड़ती है। उस संवेदना की संवेदना (बोध या अनुभूति) होना बहुत जरूरी है । अन्याय एक क्रिया है जब की विद्रोह उसकी प्रतिक्रिया जैसा कि सुई चुभने से संवेदना होती है या अग्नि के स्पर्श से उसकी जलन महसूस होती है और हम उससे बोध लेकर उससे दूर रहते हैं । संवेदना में एहसास , बोध, क्रिया और प्रतिक्रिया सम्मिलित है । यही संवेदना विद्यालंकार जी के नाट्यसाहित्य में राष्ट्रीय संवेदना के रूप में हमें अनुभूत होती है । अर्थात भारत में एकता और राष्ट्रीयता का अभाव है उसके परिणाम हम भुगत चुके है । राष्ट्रीय एकता और एकात्मता के लाभ से हम ज्ञात हैं इसलिए राष्ट्रीयता , एकता , एकात्मता और अखंड़ता की जरूरत है । यह एक संवेदन तथा संवेदना बोध है । विद्यालंकार जी जानते हैं कि विदेशी आक्रमण के कारण करीब एक हजार साल तक भारत नष्ट भ्रष्ट होता रहा है तथा एक के बाद एक विदेशी शक्तियों के अधीन रहा है । इसलिए हममें राष्ट्रीय एकता, एकात्मता , राष्ट्रीयता की जरूरत है । यही संवेदना उनके नाट्यसाहित्य में हमें मिलती है । विद्यालंकारजी की राष्ट्रीय संवेदना को और अधिक समझने के लिए प्रथमतः संवेदना शब्द तथा उसके अर्थ और तात्पर्य को जानना आवश्यक है ।

3.1 संवेदना--

संवेदना शब्द मूल संस्कृत संवेद (सम + वेद) से बना स्त्रीलिंगी रूप है । संवेद से संवेदन और बाद में संवेदना शब्द बना आगे चलकर यह क्रियाविशेषण के रूप में संवेदनीय तथा संवेदय और भूतकालिन कृदंत रूप संवेदित बना है ।" यह अंग्रेजी शब्द - Sympathy - (सिम्पथि) के नजदीक का शब्द है, जिसका अर्थ है"सहानुभूति"।"[1]

---

1 रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश, पृष्ठ - 237 ।

संवेदना यह अनुभूत करने की चीज है अतः जिसका मन संवेदनशील होता है उसे ही संवेदना हाती है । संवेदना से सीधा अर्थ नेकलता हे, " मन में होनेवाला बोध या अनुभव ।"[1] फिर भी संवेदना को किसी सीमित दायरे में ब्राँध नहीं जा सकता । इसी कारण इसकी एक परिपूर्ण परिभाषा असंभव-सी लगती है । संवेदना अनुभव करने की चीज होने के कारण उसका क्षेत्र व्यापक है । संवेदना अनेक दिशाओं में बढ़ती रहती है । अर्थात व्यक्तिगत संवेदना, समष्टिगत (सामाजिक संवेदना) तथा राष्ट्रीय संवेदना आदि । व्यक्ति, समाज, देश जैसी अनक दिशाओं की तरफ वह फैलती रहीत है ।

संवेदनशील व्यक्ति को ही संवेदना होती है अतः संवेदनशील मनुष्य कठोर नहीं हो सकता । उसमें प्रेम, सहानुभूति, दया भी होती है, जैसे कि ऊपर कहा गया है अंग्रेजी के "सिम्पथि"(**sympathy**) के नजदिक "संवेदना" है । संवेदना का " नालन्दा विशाल शब्दसागर " में यह अर्थ भी मिलता है कि संवेदना याने " किसी को कष्ट में देखकर मन में होनेवाला दुख, सहानुभूति ।"[2] अर्थात कष्ठ में तथा अभाव के कारण हमारे मन में संवेदना जाग उठती है । उदाहरण के तौर पर अर्थ के अभाव में (गरीबी या गरिबों के प्रति) हमारे हृदय से संवेदना की लहर उमड़ पड़ती है । संवेदना का वैज्ञानिक अर्थ साधारणतः हम जानते हैं कि सुई चुभने से हमारे मस्तिष्क में संवेदना (ज्ञान) होती है । तात्पर्य यह कि संवेदना याने " किसी प्रकार के प्रभाव, स्पर्श आदि के कारण शरीर के अंगो या स्नायुओं में प्राकृतिक रूप से होनेवाला वह स्पंदन जिससे मन को उसकी अनुभूति होती है ।"[3] अब प्रश्न यह भी है कि संवेदना क्यों और कैसे उत्पन्न होती है ? तथा उसका परिणाम क्या होता है ? यह समझने के लिए हमें संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति, आर्थ और परिभाषओं को देखना आवश्यक है ।

3.2 संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति--

"हिंदी उच्चारण कोश" में संवेदन की व्युत्पत्ति इस तरह दी है --

---

1 सं. नवलजी - नालन्दा विशल शब्दसागर, पृष्ठ - 1385 ।

2 वही, पृष्ठ - 1385 ।

3 रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश पृष्ट - 237 ।

"संवेद = संवे ऽ द – सॅम – वेद
सॅम – वेद्दय
सॅम – वेद – दय (स)
संवेद
संवेदन = संवेद/न = सॅम – वे दॅन ना
सॅम – वेद – नॉ
संवेदना ।"[1]

संवद से संवेदन और संवेदन से संवेदना शब्द बना है।

संवेदना= सं + वेदना = वेदना के साथ अथवा वेदना सह । अर्थात पीड़ा या वेदना से संवेदना उत्पन्न होती है । तात्पर्य यह कि समस्या, पीड़ा, दर्द, दुख, वेदना आदि के कारण संवेदना का जन्म होता है ।

3.3 संवेदना का अर्थ--

संवेदना शब्द विभिन्न शब्दकोशों में अलग-अलग प्रकार से प्रयुक्त मिलता हे फिर भी उसका अर्थ और लक्ष्य एक ही है । " नालन्दा विशाल शब्दसागर " में संवदेना शब्द इस प्रकार से मिलता है -" संवेदना – मन में होनेवाला बोध या अनुभव,अनुभूत , किसी को कष्ट में देखकर मन में होनेवाला दुख, सहानुभूति।"[2] " आधुनिक हिंदी शब्दकोश " में गोविंद चातक संवेदना का अर्थ इस प्रकार देते हैं -- "तीव्र अनुभूति, चेतना, भावना, वेदना,ज्ञान , बोध, सहानुभूति, दूसरे का दुख देखकर मन में होनेवाली अनुभूति ।"[3] संवेदना शब्द बहुत व्यापक अर्थ में होने के कारण उसे जानने के लिए उससे संबंधित अन्य शब्दों के अर्थों को समझना भी जरूरी होता हे ।जैसे --

"संवेद = सुख,दुख आदि का अनुभव करना।ज्ञान या बोध करना ।
संवेदनीय = अनुभव योग्य, जताने लायक ।,
संवेदित = अनुभव किया हुआ, बताया या जताया हुआ ।,
संवेदय = सुख,दुख आदि का अनुभव करने योग्य ,दूसरे को अनुभव करने योग्य।[4]

---

1 भोलानाथ तिवारी – हिंदी उच्चारण कोश, पृष्ठ – 413 ।
2 सं.नवलजी – नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ – 1385 ।
3 सं. गोविंद चातक – आधुनिक हिंदी शब्द-कोश, पृष्ठ– 595 ।
4 सं.नवलजी – नालन्दा विशाल शब्दसागर , पृष्ठ– 1385 ।

3.4 संवेदना की परिभाषा--

संवेदना होने या उसे जानने के लिए संवेदनशील व्यक्ति की जरूरत होती है । संवेदनक्षम व्यक्ति ही प्राणवान,जागरूक या चेतन होने का प्रमाण है। मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी होने के कारण उसकी संवेदना गहरी और इतर प्राणीजगत के मुकाबले में अलग है । पेड-पौधे भी संवेदनशील है,उदाहरण के तौर पर लाजाळू (छुई-मुई) की वनस्पती है । मानवीय संवेदना को खोजना ,जानना, पहचानना संवेदनशील व्यक्ति का काम है । संवेदना अनेक प्रकार की होती है, जैसे – सामाजिक संवेदना, सांस्कृतिक संवेदना, व्यक्तिगत संवेदना, युगीन संवेदना, राष्ट्रीय संवेदना आदि । इसी कारण संवेदना की एक परिपूर्ण परिभाषा बताना हर-एक का अपना-अपना दृष्टिकोण और अपनी-अपनी अनुभूति की वजह से संवेदना की परिभाषा अलग होते हुएभी एक दूसरी के वहुत नजदीक है । संवेदना की कोशगत परिभाषाएँ निम्न हैं --

1 मन में सुख दुख आदि की होनेवाली अनुभूति या प्रतीति ।,
2 किसी प्रकार के प्रभाव ,स्पर्श आदि के कारण शरीर के अंगो या स्नायुओं में प्राकृतिक रूप से होनेवाला वह स्पंदन जिससे मन को उसको अनुभूति होती है ।,
3 किसीकी वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना ।,
4 उक्त प्रकार का दुख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया या भाव ।,
5 किसी को किसी बात का ज्ञान हो जाना या बोध कराना ।"[1] संवेदना है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधारपर निष्कर्ष यह निकलता है कि संवेदना का तात्पर्य अनुभूति परक विचारधारा से है। यह विचारधारा ही संवेदना का स्रोत है क्योंकि कोई एक घटना मनुष्य को सोचने विचार करने के लिए प्रेरित करती है । उससे उनके मन में हलचल मचती है । कुछ करने के लिए मन प्रेरित होता है सही अर्थ में यहीं तो संवेदना है । किसी व्यक्ति के मन में होनेवाला बोध या अनुभव संवेदना है फिर भी आज के जमाने में व्यक्ति-व्यक्ति के प्रति ,समाज के प्रति और देश(राष्ट्र) के प्रति मनुष्य की संवेदना कम हो गयी है। इसी दुख को वेदना को विद्यालंकार जी प्रकट करते हुए समाज में , राष्ट्र में संवेदना की लहर अपने नाटकों के जरिए दौड़ाना चाहते हैं। संवेदना से मनुष्य को चेताया भी जाता है चेतन मनुष्य जीवंतता का प्रमाण है ।

संवेदना व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र में युगानुरूप होती है । वेदना , समस्या, पीड़ा, दर्द तथा संघर्ष आदि में संवेदना स्थित है । हर युग में एक ही समस्या नहीं होती तथा एक ही समस्या चिरकाल

1 रामचंद्र वर्मा – मानक हिंदी कोश(पाँचवा खंड), पृष्ठ – 237 ।

नहीं रहती । जब नई समस्या पैदा होती है तब नई संवेदना जन्म लेती है । समस्या से उत्पन्न संवेदना का संबंध व्यक्ति और समाज से बढ़कर जब राष्ट्र से होता है तब वह राष्ट्रीय संवेदना कहलाती है ।

3.5 राष्ट्रीय संवेदना--

राष्ट्रीय संवेदना को समझने के लिए प्रथम्तः उनसे संबंधित "राष्ट्र" तथा "राष्ट्रीय" शब्दों को जानना जरूरी है ।

राष्ट्र--

राष्ट्र शब्द का कोशगत अर्थ है " राज्य, देश, मुल्क तथा प्रजा ।, राष्ट्र वह लोक समुदाय है, जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो अथवा एक भाषा या समभाषा-भाषी जन समुह ।"[1] अंग्रेजो में " नेशन " शब्द का प्रयोग जिस संदर्भ में किया जाता हे उसी संदर्भ में राष्ट्र शब्द प्रयुक्त होता है । जैसे - भारत राष्ट्र ।

बहुत-सी मानव स्फूर्तियाँ , महत्त्वकांक्षाएँ आर भाव स्वाभाविक या कृत्रिम रूप में परस्पर मिलकर उस बृहद् संयोग की सृष्टि करते हैं, जिसे हम राष्ट्र शब्द से अभिव्यक्त करते हैं । भाषा, धर्म, कला, विज्ञान , आहार , भाव, मैत्री , मिलना-जुलना , वेश-भूषा , खेल - कूद, भी इसमें योगदान करते हैं । अर्थात राष्ट्र में व्यक्ति और व्यक्ति समुदाय के सभी व्यावहारिक क्रिया कर्म (जीवन योगदान करते हैं ।

राष्ट्रीय शब्द का कोशगत अर्थ है -- " राष्ट्रसंबंधी या राष्ट्रका ।, विशेषतः अपने राष्ट्र या देश से संबंध रखनेवाला ।"[2] राष्ट्रीय का तात्पर्य यह ह कि एक ही राष्ट्र से संबंधित सभी चीज राष्ट्रीय हैं ।

उपर्युक्त आधार पर राष्ट्रीय संवेदना का अर्थ यह निकालने में कोई संकोच नहीं है कि राष्ट्र के संबंध में मन में होनेवाले भाव-भावनाएँ राष्ट्रीय संवेदना है। यह भाव-भावनाएँ प्रेम, भक्ति, चेतना , राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद के संबंध में होती है। अतः राष्ट्रीय संवेदना में राष्ट्रप्रेम , राष्ट्रभक्ति , राष्ट्रीय

---

1 सं. श्यामसुंदरदास - हिंदी शब्द सागर, पृष्ठ - 4172 ।

2 वही, पृष्ठ - 4173 ।

चेतना , राष्ट्रीयता, एकता–एकात्मता आदि का अटूट संबंध है या योगदान रहता है । ये सब चीजें राष्ट्रीय संवेदना की दिशा या उसके आधारस्तंभ हैं । मन के भाव जब राष्ट्र के प्रति संवेदनक्षम हो उठते है और उससे जो प्रतिक्रिया उठती है, फिर चाहे वह लेखनीद्वारा या कार्यद्वारा हो, तब हम उसे राष्ट्रीय संवेदना कह सकते हैं ।

3.6 **राष्ट्रीय संवेदना और राष्ट्रीयता–**

राष्ट्रीय का अर्थ ––

राष्ट्रीयता का कोशगत अर्थ है," राष्ट्रप्रेम, देश भक्ति ।"[1] मनुष्य की राष्ट्रीयता उसकी मातृभूमि है, इसी के आधार पर उसकी राष्ट्रीयता जानी जा सकती है । इस मातृ या भूमि के प्रति उसे प्रेम होना स्वाभाविक है । इसी प्रेम के कारण अपने राष्ट्र के प्रति मनुष्य के मन में संवेदना उत्पन्न होती है और उस संवेदना के प्रतिक्रिया स्वरूप वह मनुष्य प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है । राष्ट्रीय संवेदना का राष्ट्रीयता से इस दृष्टि से गहरा संबंध है । जब भी साहित्य राष्ट्रीय भावों से लिखा जाता है तब उसमें राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय संवेदना के दर्शन होते हैं जिसका हमें अनुभव हो जाता है ।राष्ट्रीयता मनुष्य की भावात्मक चेतना है । मानव की अन्तश्चेतना से संबंधित होने के कारण ही वह केवल–मात्र अनुभव की वस्तु है ।

संवेदना के प्रतिक्रिया रूप में भाव भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है । संवेदना जीवंतता का लक्षण मान लिया तो भाव भावनाएँ उसका प्रमाण है । इसी प्रमाण को हम चेतना कह सकते हैं । संवेदना और राष्ट्रीयता दोनों भीअनुभव करने की वस्तु है । इन दोनों का बोध ही राष्ट्रीय संवेदना है । राष्ट्रीय भावनाओं में राष्ट्रवाद का स्थान बहुत बड़ा है, उसका अर्थ बहुत गहरा है, जो संवेदनशील मनुष्य ही जान सकता है । यह राष्ट्रीय संवेदना (राष्ट्रप्रेम) की बहुत प्रखर और आदर्शवादी दिशा है जिसे समझना जरूरी है ।

राष्ट्रवाद मत या सिद्धांत यह है कि जो " राष्ट्र के सभी निवासियों में राष्ट्रीयता की भावना (राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति) दृढ़तापूर्वक बनी रहनी चाहिए । राष्ट्रीय परम्पराओं के गौरव का ध्यान रखते हुए उनका पालन होना चाहिए । यह धारणा कि हमें राष्ट्र की उन्नति, संपन्नता ,विस्तार आदि का ध्यान रखना चाहिए ।"[2] राष्ट्रवाद अंग्रेजी के " नेशनॅलिज्म्" (**Nationalism**)

---

1 सं. गोविंद चातक – आधुनिक हिंदी शब्द – कोश, पृष्ठ – 462 ।

2 रामचंद्र वर्मा – मानक हिंदी कोश, पृष्ठ – 506 ।

के अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है " लव्ह फॉर कंट्री "(Love for country)अर्थात राष्ट्रप्रेम । अतः राष्ट्रवाद मूलतः राष्ट्रप्रेम है ।यह राष्ट्रीयता में योगदान करता है तथा राष्ट्रीय संवेदना में संवेदना बोध का ।

3.7 **राष्ट्रीयता का अभाव**: राष्ट्रीय संवेदना का मूल --

राष्ट्रीयता का अभाव ही राष्ट्रीय संवेदना का वास्तविक मूल है । भारतीय इतिहास में देखा जाय तो जब कभी राष्ट्रीयता का अभाव पैदा हुआ तब देश गहरे संकट में पड़ गया है । मतलब देश गुलामी में जाना, देश में गरीबी ,भूखमरी की स्थिति,बेमानी, भ्रष्टाचार की स्थिति, प्रान्तीयता की भावना पैदा होना । इसलिए जरूरी है कि राष्ट्रीयता का स्रोत हमेशा प्रवाहित रहे ।इसी में देश की भलाई है और देश अपना विकास तभी कर सकता है जब उस देश की जनता में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई हो ।यह भी एक प्रकार से राष्ट्रीय संवेदना बोध है जो विद्यालंकार जी के नाटक हमें देते हैं ।

*सार्वजनीन*देशभक्ति के अभाव ने तथा राजनीतिक सामर्थ्य के पूर्ण अभाव ने और शासकों के प्रति जनसाधारण की परम्परागत उपेक्षावृत्ति ने इस विशालप्राय देश को भारतीयों ने समुद्र पार से आये हुए इने-गिने सौदागरों के हाथों में दे दिया । यह भारतीय इतिहास हमें ज्ञात है । इसी कारण भारतवासियों को कई सालों तक गुलामी में रहना पड़ा था अपने मान-सम्मान ,स्वातंत्र्य और स्वाभिमान को भी गँवाना पड़ा । इसलिए देश में जागरूक,सामर्थ्यशाली शासक एवं देशप्रेमियों की आवश्यकता विद्यालंकार जी अपने नाटक साहित्य में बताते हैं । इसी राष्ट्रीय संवेदना को लेकर भारतीय नागरिक एक होकर भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन में कूद पड़े और अंत में सफल रहें । परन्तु आज फिर स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवादी नागरिकों का अभाव-सा बढ़ता जा रहा है जिसके कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं । जिस आवश्यकता ने राष्ट्रीयता को जन्म दिया था उसकी पूर्ति न होने के कारण आज राष्ट्रीयता कमजोर पड़ गई है । प्रादेशिकता की भावना पृथकवादी आंदोलन के रूप में (उत्तराखण्ड आंदोलन,झारखंड मुक्ति तथा विदर्भ जैसे आंदोलन) राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय एकता को छिन्न-विछिन्न कर रही है । नाटककार विद्यालंकार जी ने गुलाम भारत और स्वतंत्र भारत दोनों को अनुभूत किया है इस कारण उनमें प्रबल राष्ट्रवाद दिखाई देता है ।वे अपने साहित्य के माध्यम से

राष्ट्रीयता को बढ़ावा देना चाहते हैं । उनकी इस संवेदना को हम उनके नाटकों में सर्वत्र पाते हैं ।

3.8 राष्ट्रीयता का जन्म--

अपनी मातृभूमि को आजाद करने के लिए, गुलामी की जंजीरों से मुक्ति पाने के लिए, संघर्ष , महानत्याग और साधना आदि सन 1947 के पूर्व भारतीय राष्ट्रीयता के पीछे कार्य कर रहे थे। राष्ट्र की उन्नति के लिए उसे मजबूत और शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए राष्ट्रवादी और राष्ट्रीयता की भावना ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है । इसी राष्ट्रीयता से भारत का कुछ मात्रा में विकास हुआ और हो रहा है । फिर भी आज इसी राष्ट्रीयता की भावना के अभाव में भारत पुनः विनाश और गुलामगिरी के कगार पर खड़ा हो रहा है इसी संवेदना को विद्यालंकार जी अपनी नाट्य कृतियों में प्रकट करते हैं ।

सम्पूर्ण विश्व में 19 वीं सदी में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भावना की लहर आयी है । इस समय पूरा विश्व विनाश की ओर था और संघर्ष,अशांति और विद्रोह से ग्रस्त था ।हर एक को अपने ही राष्ट्र की चिंता थी । लोगों ने उस वक्त से ही एक राष्ट्र तथा एक मजबूत शासन के संबंध में ज्यादा सोचना प्रारंभ किया । यह राष्ट्रीयता की भावना ही राष्ट्रीय संवेदना है । लोगों ने राष्ट्र को मजबूत बनाने के लिए संकुचित प्रांतीयता की भावना को छोड़कर राष्ट्रवादी दृष्टि अपनाना शुरू कर दिया । यहाँ लागों की राष्ट्रीय संवेदना जागृत दिखाई देती है । आज फिर इसीसंवेदना को जगाना आवश्यक है ऐसा नाटककार को महसूस होता है । राष्ट्रीय संवेदना को पुनर्जागृत करने के उद्देश्य से उन्होंने राष्ट्रीय भावों से परिपूर्ण नाट्यसाहित्य का निर्माण किया ।" राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म देने में सामाजिक, ,राजकीय,आर्थिक सांस्कृतिक कारणों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है ।"[1] साहित्य से समाज जागृत होता है अतः अपने नाट्यसाहित्य में सामाजिक, राजनीतिक,सांस्कृतिक, आर्थिक समस्याओं को दिखाकर उनमें सुधारवादी दृष्टिकोन लाने का प्रयत्न रचनाकार करना चाहते हैं और ये सुधार ही जनता को सुसंस्कृत ,सभ्य, शिक्षित और जागृत करते हैं । नाटककार चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी ने भी अपने नाट्य साहित्य में हमारे राष्ट्र में स्थित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि समस्याओं का चित्रण किया है तथा देशवासियों में रष्ट्रीयता जगाने का प्रयास किया है ।" भारत में स्वातंत्र्यकालीन कालखंड में भी सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों ने जनता को शिक्षित और जागृत किया जिससे आधुनिक चेतना का

---

1 सं.महिपसिंह -"संचेतना" मासिक, अंक फरवरी 1987, पृष्ठ - 41 ।

निर्माण हुआ । इसी धार्मिक चेतना ने राष्ट्रवाद के आधार का काम किया है।"[1]

विद्रोह और क्रांति राष्ट्रीय संवेदना की जीवंत चेतना है । साहित्य द्वारा समाज को यह चेतना मिलती है । अतः राष्ट्रीयता को बढ़ावा देने में साहित्यरचना मदद करती है । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के नाटकों से यही चेतना हमें प्राप्त होती है ।

3.9 **राष्ट्रीय एकता--**

भारत राष्ट्रीय और राजनीतिक रूप में कभी एक नहीं रहा । विदेशी आक्रमणों के कारण लगभग एक हजार साल तक उसकी लूट होती रहीं तथा उसे एक के बाद एक विदेशी ताकतों के कब्जे में करीब-करीब एक हजार साल तक रहना पड़ा । इसलिए उस कालखंड से आज तक भारतवासियों में राष्ट्रीय एकता के तत्त्व की जरूरत है । भारतवासियों ने सन 1942 के स्वातन्त्र्य आंदोलन में राष्ट्रीय एकता का दर्शन दिया। परन्तु आज फिर वह लुप्त हो गयी । विद्यालंकार जी अपने नाट्य साहित्य के माध्यम से अपना राष्ट्र, अपनी प्राचीन संस्कृति तथा इतिहास को आधार बनाकर उनकी ओर दृष्टिक्षेप डालते हैं और इतिहास तथा संस्कृति की याद दिलाते हैं । वे भारतीय इतिहासऔर संस्कृति के द्वारा राष्ट्रीय संवेदना समाज मन में उत्पन्न करना चाहते हैं ।" लोगों के हृदय में राष्ट्रीय भावना पैदा करने में साहित्यरचना मदद करती है ।"[2] समाज मन में राष्ट्रीय भावना का उदय राष्ट्रीय एकता और एकात्मता का द्योतक है ।

राष्ट्र के नागरिकों का जागरूक होना आवश्यक है । हम जागरूक रहकर ही राष्ट्र के आदर्श नागरिक बन सकते हैं । जागरूक नागरिकों के ही हाथों देश का भविष्य अवलंबित है । अतः राष्ट्र का ढाँचा जिन सामाजिक ,राजकीय, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों पर आधारित है, उन्हें मजबूत बनाने का काम नागरिकों का है । यह काम कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता इसलिए राष्ट्रीय एकता और एकात्मता की जरूरत है । यह अनुभूति , यह संवेदना हमें विद्यालंकार जी के नाटकों में यत्र-तत्र सर्वत्र मिलती है ।

---

1 सं.महिपसिंह - "संचेतना," मासिक, अंक फरवरी, 1987, पृष्ठ - 40 ।

2 वही, पृष्ठ - 41 ।

3.10 समस्या और संवेदना--

जनता की समस्या का समाधान साहित्य सूचित करता है । हर युग में नई-नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और समाप्त भी होती है ।समस्या से होसंवेदना जन्म लेती है।समस्या प्रत्येक समाज और देश की व्यथा, वेदना, दुख है । युगविशेष की प्रतिमा युग की समस्या और समाधान में मानी जाती है । अनेक नई प्रथाएँ उनकी रोशनी में जन्म लेती है और नष्ट भी होती हैं । अर्थात हर समस्या चिरकाल अनंत समय तक नहीं रहती ।काल के प्रभाव के कारण एक तो समस्या में परिवर्तन आता है या समस्या हल हो जाती है। व्यक्ति में संवेदना कम ज्यादा भी रहती है अर्थात समाज में संवेदना बनती, मिलतीऔर पनपती रहीत है ।

"समस्याएँ वे साधन हैं जिनके द्वारा किसी सिद्धांत या किसी दर्शन अथवा पूर्ण अर्थ में किसीसंवेदना का जन्म होता है ।"[1] किसी भी साहित्य विधा वह चाहे नाटक भी क्यों न हो उनका संबंध मूलतः अपने युगीन संवेदनशीलता तथा उसके मूल में अंतर्निहित द्वंदव् की प्रतीक समस्यासे रहता है । फिर भी सेंवदना और समस्या एक नहीं हे, उनमें अंतर जरूर है, मगर उनका संबंध भी अटूट है । संवेदना अपने आप में सब समस्याओं को स्वीकार कर उस पर चिंतन-मनन का प्रवाह लेकर चलती है तो समस्या सिर्फ एकाध दूसरे प्रश्न को लेकर निकल जाती है ।समस्या किसी विचार, आस्था, रूढ़ि ,परम्परा ,श्रद्धा या समाज के आधुनिक विचारों के कारण निर्माण होती है ।इस पर उपाय योजना करने का काम संवेदना का है अर्थात समस्या का हल संवेदना कर देती है । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के नाटकों में प्रधान रूप से साम्प्रदायिकना, जातीयता , प्रान्तीयता, बेकारी, भ्रष्टाचार, अमानवीयता आदि समस्याएँ उठाई गयी हैं । लेखक इन समस्याओं के प्रति सजग है ।ये सारी समस्याएँ हमारे राष्ट्र की प्रधान समस्याएँ रही है । नाटककार विद्यालंकार जी ने इन समस्याओं को चित्रित कर अपनी ओर से उनके समाधान भी सूचित किये हैं । यहाँ लेखक में स्थित राष्ट्रीय संवेदना दृष्टिगोचर होती है ।

3.11 विवेच्य नाट्य साहित्य और राष्ट्रीय संवेदना--

"समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक " में शेखर शर्मा लिखते हैं कि " साहित्य में संवेदना से अभिप्राय है, वह अनुभूति प्रवणता जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता से प्रेरित

---

1 भूपेन्द्र कलसी - प्रसादोत्तर कालीन नाटक, पृष्ठ - 109 ।

होती है ।"[1] इनके अनुसार राष्ट्र में घटनेवाली घटनाओं के प्रभावों को अपने अनुभूत शक्तिद्वारा "राष्ट्रीय संवेदना " ग्रहण करने की क्षमता रखती है। मान्व के विकासोन्मुख प्रवृत्ति के मार्मिक अंगों की स्पष्ट अभिव्यक्ति साहित्य में चित्रित की जाती है जिसमें किसी भी जाति, समाज या राष्ट्रविशेष की मनोवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । विद्यालंकार जी अपने नाट्य साहित्य में इसी मनोवृत्ति को प्रतिबिम्बित करने में सफल हुए हैं । उदाहरण स्वरूप "रेवा " नाटक के आशाद्वीप निवासियों की मनोवृत्ति का चित्रण । वे अपने नाट्य साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीयता, विश्वबंधुत्व , अहिंसा और शांति का संदेश देते हैं । उनकी दृष्टि से राष्ट्रीयता का मतलब अन्य राष्ट्रों से धृणा और अपने राष्ट्र से ही प्रेम व्यक्त करना ऐसा कदापि नहीं है । इस दृष्टि से डॉ. राधाकृष्णन के राष्ट्रीयता के संदर्भ में विचार बहुत व्यापक हैं जो उन्होंने "रीलीजन एन्ड सोसायटी" नामक ग्रंथ में लिखे हैं " राष्ट्रीयता मनुष्य की मूलप्रवृत्ति नहीं है । यह अर्जित ,कृत्रिम आवेगमात्र है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से राष्ट्रीयता व्यक्ति के मन की स्व से परम की ओर चलनेवाली यात्रा के लिए संचित पाथेय है । इस यात्रा में पड़नेवाले स्थान है – परिवार, ग्राम, जिला, राज्य, राष्ट्र ,विश्व आदि । राष्ट्रीयता मनुष्य को विश्वबंधुत्व की ओर अग्रेसर करके परमप्राप्ति में सहायक बनती है । आधुनिक विश्व में इसी रूप में राष्ट्रीयता का विकास हुआ है ।"[2] विद्यालंकार जी राष्ट्रीयता के इसी आदर्श को अपने नाट्य साहित्य के जरिए उजागर करना चाहते हैं । उन्होंने राष्ट्रीयता को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण साहित्य लिखा है। उन्होंने अपने नाटक तथा कहानी में राष्ट्रीयता को प्रधानता दी है । वे जनता में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सुधार लाना चाहते हैं । वे समस्याओं से अनुभूति पाकर सचेत हो जाने की आशा पाठकों से करते हैं ।

विद्यालंकार जी ने स्वतंत्र्योत्तर भारत में उत्पन्न अनेक नई–नई समस्याओं को सामने रखकर उनको हल करनेके उपाय भी दिये हैं । समस्याओं के मूल पर उन्होंने प्रहार किया है और आदर्श पात्रों के माध्यम से राष्ट्र की पुनःनिर्मिति की आशा की है । स्वार्थों की होड में आज राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ गई है।इसलिए वे देश में गहरी भावात्मक एकता का प्रसार करना चाहते हैं ।

भारत को स्वाधीनता के बाद जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है वे हैं गरीबी, अशिक्षा, भूखमरी तथा आबादी आदि की समस्या इसके साथ ही बेकारी, अंधविश्वास, स्वार्थसाधन,

---

1 शेखर शर्मा – समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक, पृष्ठ – 27 ।

2 सं. प्रेमनारायण शुक्ल – "संमेलनपत्रिका", त्रैमासिक ,अंक चैत्र–मार्गशिर्ष शक 1897, पृष्ठ – 187 ।

प्रान्तीयता , ईर्ष्या , फूट , जातीयता इन सब बातों को उन्होंने अपने नाटक "न्याय की रात " की भूमिका में लिखा है। इन समस्याओं का सामना करनेके लिए समाज में निःस्वार्थ साधना की आवश्यकता वे बताते हैं । वे देश के सभी नौजवानों में राष्ट्रीयता की भावना भर देना चाहते हैं जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में इस देश के पीछले तीन स्वाधीनता संग्रामों में (1921 , 1930 और 1942) दिखाई दिया था ।

विद्यालंकार जी ने राष्ट्र की उन्नती के लिए देश की राजनीतिक , सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया है और वह बात सही भी है । क्योंकि इनमें से एक भी व्यवस्था बिगड़ गई तो देश के समूचे ढॉंचे को हिला देती है । स्वातंत्र्यकालीन कालखंड में भी भारत की " आर्थिक व्यवस्था लड़खड़ाने के कारण देश के समूचे सामाजिक ढॉंचे में आमूल परिवर्तन आया था ।"[1] इसी राष्ट्रीय संवेदना से बोध लेकर राष्ट्र ने (भारत) आर्थिक सुधारों पर बल देने के उपाय खोजे थे । चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी का नाट्य साहित्य राष्ट्रीय संवेदना से ओतप्रोत है ।

3.12 **विवेच्य नाटकों की संवेदना और परिवर्तित मानसिक स्थिति--**

स्वधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय जनता की मानसिक स्थिति में जो बदलाव आया है उस पर विद्यालंकार जी बहुत संवेदनशील हुए हैं । उन्होंने देखा कि भारतीय जनता की मानसिकता निष्क्रियता में बदल गई है । आज भारतीय मन इस स्थिति में है कि उस पर किसी बात का प्रभाव या असर पड़ना मुस्किल बन गया है । तात्पर्य समाज अचेतन, संवेदनहीन बना हुआ है । विद्यालंकार जी के शब्दों में " इस दशा में कोई चीज तहलका नहीं मचा पाती और बुरी चीज खिन्नता उत्पन्न नहीं कर सकती ।"[2] वे चाहते हैं कि भारतीय मन संवेदनाक्षम बनें ।इसलिए वे अपने साहित्य में राष्ट्रीय संवेदना (राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय भावना) की लहर दौड़ना चाहते हैं ।

विद्यालंकार जी स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जनता की बदली हुई मनःस्थिति पर गहरी चिंता प्रकट करते हैं । आज भारतीय लोंगों के मूल दृष्टिकोण ही बदल गए हैं । वे उन्हें उचित समय पर जगाना

---

1 सं. महिपसिंह – "संचेतना " मासिक अंक फरवरी ,1987, पृष्ठ – 41 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार– न्याय की रात , पृष्ठ – 4 ।

चाहते हैं । नाटककार विद्यालंकार जी ने देश के राजनीतिक कार्यकर्ता , सरकारी कर्मचारी, धार्मिक लोग, बुर्जुआ जमातें और विद्यार्थी आदि की मनोदशा को " न्याय की रात " की भूमिका में इस तरह व्याख्यायित किया है --

" राजनीतिक कार्यकर्ता -- आजादी की लड़ाई में हमने हिस्सा लिया था, अब आजादी मिल गई है, अब हमारा हक है कि हम आराम करें हमारी प्रतिष्ठा हो, हमें बड़े-बड़े ओहदे मिलें और हम फायदा उठायें ; सरकारी कर्मचारी--अंग्रेजों के जमाने में भी हम शासन चलाते थे , चाहे उस जमाने में हम छोटे--मोटे अफसर या क्लर्क ही क्यों न रहे हो केवल हमीं जानते हैं कि शासन किस तरह चलाया जाता है, इसलिए बारह बरसों में ही हमारा रुतबा अगर 5-6 गुना बढ़ गया है तो यह हमारा हक है । हमें इससे भी अधिक अधिकार, सुविधाएँ और धन दो ।,

पूँजीपति -- हमें उद्योग - व्यवसाय का पुराना और पुश्तैनी अनुभव है । देश को अब सभीकुछ अपने यहाँ ही बनाना है,सो वह सब हमारा हिस्सा है । प्राइवेट सेक्टर हमारा है, उसके सभी उद्योगों पर पूर्व रूप से हमारा ही अधिकार और हमारा ही नियंत्रण रहना चाहिए । यानी व्यवसाय का पूरा मुनाफा हमारा मुनाफा है।,

जनस्वातंत्र्य -- जनता की आजादी का मतलब यह है कि अब हमारा कोई उत्तरदायित्व बाकी नहीं रहा, जो कुछ करना है, सब सरकार को करना है, सब समस्याओं को हल करना सरकार का ही काम है, नहीं तो विदशी सरकार और अपनी सरकार में फर्क ही क्या हुआ ?,

बुजुर्आ जमाते -- हम बहुत दूरदर्शी हैं, कानूनदा है,हम जानते हैं कि कानून से किस तरह बचा जा सकता है, हम यह भी जानते है कि पुरानी मनोवृत्ति आज भी गई नहीं, यानी अफसर और जनता के तथाकथित नेता दोनों को खरीदा जा सकता है, हम यह भी जानते हैं कि यातायात के साधनों की कमी आदि का उपयोग कर हम मनमाना फायदा उठा सकते हैं, हम जब चाहें कीमतें चढ़ा सकते हैं,हम टैक्स बचा सकते हैं,हम जनता को अंधकार में रख सकते हैं , हमारे लिए स्वाधीनता का यही सबसे बड़ा वरदान है।,

धार्मिक श्रेणी -- हमारे देश की संस्कृति और आचार सबसे उन्नत है, संसार भर में केवल हमीं ने अहिंसात्मक उपायों से स्वाधीनता प्राप्त की है, इस तरह हम संसार के सबसे उन्नत राष्ट्रों में हैं । भौतिक उन्नति में, रखा ही क्या है ? हम संसार के आध्यात्मिक नेता हैं ।

विद्यार्थी -- हम नौजवानी की ओर कदम बढ़ानेवाले विद्यार्थी हैं , देश आजाद है और हम भीआजाद हैं हम जिस तरह चाहेंगे,शिक्षा की व्यवस्था उसी तरह होनी चाहिए । कल देश की बागडोर हमारे हाथों

में आएगी, तो आज ही आ जाए तो हर्ज ही क्या है?इत्यादी ।"[1] यहाँ विद्यालंकार जी के सामाजिक अनुभव का संवेदन प्रबल है । उन्होंने उपर्युक्त कथन में देश के विभिन्न स्तरों के लोगों कीबदली हुई मानसिकता तथा उनके बदले हुए दृष्टिकोण को सही शब्दों में रेखांकित किया है । इस आधुनिक त्रासदियों को यहाँ व्यक्त किया है । यहाँ लेखक की व्यथा प्रकट होती है और राष्ट्र के प्रति उनमें सच्ची संवेदना परिलक्षित होती है ।

गलत दृष्टिकोण के कारण देश पतन की ओर बढ़ रहा है । समाज को यह " कमजोर मानसिकता " की घातक बीमारी लग गई है जो देश के लिए खतरा बन गई है ।इसी वजह से देश का विकासकार्य ठप होता जा रहा है ।यह देश की व्यथा, संवेदना हमारे मन को झकझोर देती है । इसीसंवेदना को स्पष्ट कर संकुचित मानसिक स्थिति को संवेदनक्षम बनाना और विधायक कार्य के लिए प्रेरित करना नाटककार चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी का उद्देश्य रहा है । भारतवासियों की बदली हुई मानसिकता को सुधारने हेतु वे बिगड़ी हुई राष्ट्रीय संवेदना जगाना चाहते हैं । उनके शब्दों में " इन परिस्थितियों में मेरी राय से और भी अधिक आवश्यक है कि सरकारी मशीनरी के कल–पुर्जे पूरी तरह निर्दोष हो ।जिस देश को कोई बड़ा काम करना हो अथवा जब कोई देश विषम परिस्थितियों में से गुजर रहा हो तो उसका शासनतंत्र अत्यन्त मजबूत होना चाहिए ।"[2] देश की व्यथा, समस्या को देखकर मन संवेदय बनता है, बाद में उससे कोई चेतना लेकर कुछ कर दिखाने के लिए मन तैयार होता है ।इसी संवेदनशील चेतना का अंकन विद्यालंकार जी ने अपने नाट्य साहित्य में किया है ।

3.13 विवेच्य नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना--

स्वार्थ साधन और तरफदारी की भावना ने समाज में स्थित लोगों को प्रान्तीयता तथा संकीर्णता की ओर धकेल दिया है । सब अपनेआप में मशगुल हैं । इसी कारण देश का अहित हो रहा है । अच्छे और बुरे को यहाँ देखा नहीं जाता । इसी वजह से न्याय नहीं मिलता और समाज पर अन्याय,अत्याचार हो रहा है । छोटे–बड़े,ऊँच–नीच की भावना पैदा हुई है ।इस पर गहरी चिंता विद्यालंकार जी व्यक्त करते हैं । जुगलकिशोर नामक पात्र इसी बात पर चिंतित है, एक बार वह कमला के सामने इस बात को स्पष्ट कर देता है " यहाँ देश की चिन्ता किसी को नहीं है । सब को अपनी–अपनी चिन्ता है ।कहीं दोस्ती चलती है,कहीं धड़ेबन्दी चलती है और कहीं प्रान्तीयता की सड़ी–

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात , पृष्ठ – 5 ।

2 वही, पृष्ठ – 7 ।

गली भावना चलती है । मैंने सुना है कि यहाँ काम को और योग्यता को कोई नहीं देखता ।यहाँ तो बस यहीदेखा जाता है कि किसकी पहुँच कहाँ तक है ।"[1] अन्याय ,अत्याचार और शोषण से जूझने की पात्र की मानसिकता को यह विचार प्रस्तुत करता है । इन प्रस्तुतियों का गुण इस विचार के मौन में है, विचार मुखरित न होते हुए भी अधिक प्रभावी हैं । जुगलकिशोर की संवेदना को छूने की ताकत इसमें है ।

भ्रष्ट और स्वार्थी नेता, पाखण्डी समाजसेवकों के कारण देश अवनति की राह पर चल रहा है ।वे लोग देश की उन्नति में हमेशा बाधा उत्पन्न करते हैं । नेता और समाज सेवकों का दोगला रूप देश को हानिकारक है ।" न्याय की रात " का पात्र हेनन्त समाज में देशसेवक के रूप में देश का भक्षण करने निकला है । समाज में देशसेवक का नकाव पहनकर काले करनामें करता है । राजीव जो ईमानदार भारतीय नागरिक और बड़ा अफसर भी है, हेमन्त को फटकार भरे शब्दों में कहता है " आप लोगों की यहीं मेहरबानी होगी कि तरह-तरह के अवैध और गुप-छिपकर ,किए गए कामों से देश की उन्नति के मार्ग में बाधाएँ न पहुँचाएँ ।"[2] आजकल सच को सच और गलत को गलत कहने की ताकत किसीभारतीय नागरिक में नहीं रही । क्योंकि वह मजबूर हो गया है । विद्यालंकार जी राजीव जैसे पात्र के माध्यम से सच बोलने की ताकत समाज मन नें पैदा करना चाहते हैं ।

विद्यालंकार जी भारतीय जनता की मानसिक स्थिति पर प्रहार करते हैं । वे मानते हैं कि भारत एक बड़ी मानसिक बिमारी का शिकार है । भारत के बहुत सारे लोग मानसिक कमजोरी के कारण विधायक कामों के बजाय विध्वंसक कार्य की ओर प्रेरेत हो जाते हैं ।इस देश के करोड़ो निवासी किसीके कहने – सुनने से आपस में व्यर्थ ही लड़ते-झगड़ते हैं, खून-खराबा कर देते हैं । भयानक दंगे-फसाद, हत्याकांड़ कर देते हैं । वे समस्या सुलझाने जाते हैं और उसे सुलझाने के बजाय स्वार्थ हेतु बढ़ाते रहते हैं । बेवजह का संघर्ष करते रहते हैं । यह स्थिति राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से खतरे की बनी हुई है ।इसी संवेदना को जगाना नाटककार का उद्देश्य रहा है । " न्याय की रात " नाटक के राजीव के विचार यहाँ दृष्टव्य हैं " हमारा यह विशाल देश एक बहुत बड़ी मानसिक बिमारी का शिकार है । यह अत्यंत घातक बिमारी है, हमारे देश में गहरी भेदभावना की विद्यमानता । कभी प्रांत के नाम पर कभीधर्म के नाम पर और कभी जात-पात के नाम पर हमारे देश में करोड़ो निवासी आसानी से बहका लिए जाते हैं और तब वे आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगते हैं ।इन बातों में उलझकर

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – न्याय की रात , पृष्ठ – 82 ।

2 वही, पृष्ठ – 119 ।

देश की चिंता किसी को नहीं रहती । यहाँ तक की बहुत से सरकारी अफसर भी इन्हीं कमजोरियों के शिकार है ।"[1] राजीव के माध्यम से यहाँ विद्यालंकार जी के विचार परिलक्षित होते हैं ।

स्वार्थी देशद्रोही नेता, पाखण्ड़ी समाजसेवक और पाखण्ड़ी धर्मगुरू के प्रति सख्त नफरत प्रकट करते हुए राष्ट्र को कमजोर बनाने कीउनको साजिश को यहाँ विद्यालंकार जी स्पष्ट करते हैं । ये लोग ही देश के दुश्मन हैं ।वे जनता में फूट डालकर छोटे-छोटे प्रांतों में राष्ट्र को विभाजित कर उस पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं ।

विद्यालंकार जी ने देश की अनेक समस्याओं को सामने रखकर इनसे देश को छुड़ाने के लिए, कुछ कर दिखाने के लिए देशवासियों की मानसिकता सुधारने, जनता का दृष्टिकोण देशहित के काम में लानेके हेतु उसके मन में देशप्रेम , राष्ट्रवाद जगाने की सफल कोशिश की है । सामाजिक स्थिति को मजबूत औरजनता को विधायक कामों के लिए प्रेरित करने की संवेदना उनके नाटकों के जरिए हमें मिलती है ।

राष्ट्र निर्माण के लिए समर्पण करनेवाले देशप्रेमी नागरिकों की आवश्यकता राष्ट्र के लिए बहुत जरूरी है ।बलिदान ,आत्मसमर्पण और त्याग राष्ट्र के आधारस्तंभ हैं ।देश के सामने व्यक्तिगत जीवन की कोई महत्ता नहीं है ।देशहित के लिए व्यक्तिगत जीवनको त्यागना पड़ता है तथा प्रसंग आने पर देश के लिए आत्मसमर्पण भी करना पड़ता है । स्वातंत्र्यप्राप्ति के लिए किए गए त्याग तथा बलिदान की गौरवगाथाएँ हमारे सामने हैं ।इसी तरह आज भी राष्ट्रनिर्मिती के लिए मर मिटनेवाले लोगों कीजरूरत को विद्यालंकार जी हमें नाटकों के जरिए बताना चाहते हैं ।

"अशोक " नाटक का एक वीर सैनिक पात्र अपने देश पर (मातृभूमि कलिंग पर) संकट आने पर व्यक्तिगत जीवन का त्याग कर युद्धभूमि पर जाता है और देश के लिए बलिदान करता है । वह अपनी नवविवाहिता वधू को मिल न सका । उसका देशप्रेम व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठ चुका था युद्धभूमि पर वह शहिद होता है, तब उसकी जेब में एक चिट्ठी मिलती है जो उसने अपनी नवविवाहिता वधू के लिए लिखी थी । चिकित्सालय शिबिर का एक सेवक भिक्षु सेविका शीला को वह चिट्ठी पढ़कर दिखाता है " प्यारी युद्धभूमि में कागज नहीं मिलते ,इससे तुम्हारे पत्र की पीठ पर ही जवाब लिख रहा हूँ ।अब तक क्यों नहीं आया यह मिलने पर ही बताऊगाँ ।यहाँ इतना संकेत ही पर्याप्त

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात , पृष्ठ - 119 ।

है कि हमारी मातृभूमि पर बहुत शीघ्र महासंकट आने के पूरी संभावना है।बोलो क्या मुझे अनुमति न देगी कि मैं मातृभूमि की,माता की, देश की पुकार पर ध्यान दूँ ? इस मंगलवार को यानी परसो अवश्य तुम्हारी सेवा में पहुँच जाऊँगा ।"[1] वीर सैनिक देश के लिए शहिद हो गया । उसने अपने प्राणों को त्याग कर देशप्रेम का आदर्श प्रस्थापित किया। नाटककार की संवेदना है कि राष्ट्रनिर्माण के लिए भी सर्वस्वार्पण करनेवाले लोगों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी स्वंतत्रता प्राप्त करने के लिए थी । इस बलिदान की भावना (संवेदना) ने सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति पायी है ।

सत्ता हमेशा अपने लिए कुछ " विशिष्ट " सुविधाएँ बटोरती रहती है , जो सुविधाएँ आम आदमी को बड़े कठिन परिश्रम के बावजूद भी नहीं मेलती ।आजकल व्यक्तिगत स्वार्थ की होड़ में राष्ट्रीय सम्मान को बेचनेवाले राजनीतिक लोग पैदा हुए हैं जिनके कारण राष्ट्र का पतन हो रहा है नेताओं की दायित्व हीनता और अनैतिकता ,बेइमानी के कारण देश में मूल्यों में गिरावटता आ गई और देश पर नैतिक संकट आ गया है। प्रजा या जनता के हितार्थ राजा या नेता लोगों को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए ।व्यक्तिगत स्वार्थ से परे जनकल्याणकारी निर्णय देश के लिए हितकारक होता है । यही आदर्श ऐतिहासिक आधार बनाएँ " रेवा " नाटक में महारानी राजकुमारी रेवा के माध्यम से लेखक ने शासकों के लिए बतलाया है । उनके शब्दों में " रेवा – देखो राजकुमार , मैं आशाद्वीप की रानी हूँ और इसतरह संपूर्ण प्रजा की माता हूँ । मैं नहीं चाहती कि अपनी किसी भी व्यक्तिगत इच्छा या स्वार्थ के लिए मैं अपनी प्रजा के चित्त को कष्ट पहुँचाऊँ ।

यशोवर्मा – मैं तुम्हारी बात नहीं समझा राजकुमारी ।

रेवा – मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ चाहे कुछ भी हो, परन्तु मैं करूँगी वही,जो मेरी प्रजा चाहेगी ।"[2] आज प्रजातंत्र कुछ चुने हुए लोगों का ढ़ोंग पूर्ण खेल बन गया है ।नेताओं ने व्यक्ति के व्यक्तित्व की ही अपेक्षा कर दी है।ऐसे समय में जनता की इच्छा के अनुसार शासन चलानेकी यह संवेदना काफी महत्त्व रखती है ।

विद्यालंकार जी राष्ट्रीयता के बारे में काफी संवेदनशील रहे हैं ।आज विघटन और प्रांतीयता की भावना से राष्ट्रीय एकता और एकात्मता खतरे में पड़ गई है । प्राचीन काल का शक्तिशाली महासाम्राज्य हो या आज का भारत देश, उनकी राष्ट्रीयता की संकल्पना एक ही है ।महासाम्राज्य के सम्राट चोलराज अपने देश के प्रति काफी चिंतित हैं ।वे अपनी बेटी को चिंता का कारण बताते

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार –अशोक, पृष्ठ– 100 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 110 ।

है .... कभी तुमने सोचा ? यह महान भारतवर्ष सदियों तक एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में रहकर भी आज पुनः बीसियों छोटे-छोटे और दुर्बल से राज्यों में क्यों विभक्त हो गया । मैंने इस संबंध में बहुत-कुछ सोचा है और वही सब कुछ सोचकर मेरा हृदय निराशा के बोझ से दबता चला जा रहा है ।"[1] आज भारत में राष्ट्रीयता की अपेक्षा प्रांतीयता की भावना ने जोर पकड़ा है और प्रांतीयता के अनुसार छोटे-छोटे दुर्बल राज्यों की निर्मिति हो रही है । नेता लोग अपना अधिकार जमाने हेतु कही-न-कहीं किसी-न-किसी बहाने झगड़े पैदा करते हैं । वे जानते हैं कि भारत के टुकड़े-टुकड़े किए बगैर उस पर अपना स्वयं का अधिकार जताना मुश्किल है । विद्यालंकार जी हमें अपने समय की सच्चाइयों से रू-ब-रू करते हैं । वे हमें अपने सपनों ,आकांक्षाओं, विवशताओं, कामनाओं उसकी चिंताओं की तस्वीर देकर एक ऐसे राष्ट्र की रचना का निर्देश देते हैं जो शोषण के खिलाफ हो, समता की भूमि पर टिका हुआ हो, विघटन और मूल्यहीनता से मुक्ति दे सकने की आशा जगाता हो और जहाँ आदमी चिंता करने के बजाय सकुन से जी सकने का विश्वास पा सकता हो ।

सभ्यता , धर्म और व्यवहारदर्शन की ओट में आज सुशिक्षित सुसंस्कृत लोग भी मनुष्य के साथ पशुवत आचरण कर रहे हैं । विद्यालंकार जी यह स्पष्ट करते हैं कि आज सफलता के शिखर पर चढ़कर हम संवेदना शून्य होते जा रहे हैं । हम जब मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखेंगे , परखेंगे तब ही हम देश में जीवन और शक्ति का संचार कर सकते हैं । तात्पर्य संवेदनशील रष्ट्रनिर्माण की ओर विद्यालंकार जी संकेत करते हैं ।सभ्यता के नाम पर गैर आचरण करनेवाले लोगों की ओर संकेत करते हुए नाटककार यह कहना चाहते हैं कि ये लोग देश के सबसे बड़े दुश्मन हैं जिनके कारण देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है ।कोई भी बड़ा कार्य एकता, एकात्मता तथा संगठित शक्ति के बजाय असंभव है । चोलराज के अपनी बेटी इन्दिरा से कहे संवाद यहाँ दृष्टव्य हैं --" मैं सोचता हूँ कि सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचकर भी हमारे राष्ट्र की जिन आधारभूत दुर्बलताओं ने हमें निर्बल बना दिया उन दुर्बलताओं की ओर हम लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

इन्दिरा - वे दुर्बलताएँ कौन-सी हैं पिताजी ?

चोलराज- हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं देखते ।उसे हम धर्म, आचार, व्यवहार, दर्शन और सिद्धान्तों के आवरण के साथ देखना और पहचानना चाहते हैं। यहीचीज हम लोगों को परस्पर अधिक विभक्त करती चलीजा रही है । राजनीतिक साम्राज्य स्थापित करके भी, हम अपने चोलवंश को चाहे

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 29 ।

कितना ही शक्तिशाली क्यों न बना ले, संपूर्ण देश में जीवन और शक्ति का संचार नहीं कर सकते ।"[1] चोलराज के माध्यम से नाटककार कहना चाहते हैं कि राष्ट्र में एकता के साथ–साथ राष्ट्रीय एकात्मता की भी जरूरत है । राष्ट्र एक होकर भी अगर मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम न हो, सहृदय की भावना न हो और वे अंतर्गत संघर्ष करते हो तो वह एकता किस काम की जिसमें एकात्मता का, सहृदय का भाव न हो । राष्ट्रीय एकता और एकात्मता से ही हम जीवनऔर शक्ति का संचार पूरे देश में कर सकते हैं । हम सभी जानते हैं कि इतिहास के जिस दौर से नाटककार गुजरे वह हमें अपने पुराने अनुभवों के सामने नए प्रश्नचिन्ह खड़े करके सोचने को विवश कर देते हैं ।

आज मनुष्य–मनुष्य के प्रति पाशविक अत्याचार कर रहा है । हिंसा ने चरमसीमा पा ली है मनुष्य एक–दूसरे से विभक्त होता चला जा रहा है ।ऐसी स्थिति में हमें मानवीय संवेदना को जगाना आवश्यक है जो राष्ट्र के लिए हितकारक है । सभ्य भारत असभ्य बनकर मनुष्य के प्रति मानवीय संवेदना खो कर पशु जैसा बर्ताव कर रहा है ।अतः हमें जरूरी है कि हम पहले मनुष्य बनें और मनुष्य जैसा आचरण करें ।यही संवेदना बोध नाटककार अपनी नाट्य रचना के माध्यम से ध्वनित कराते हैं ।

3.14 विवेच्य नाटकों में राष्ट्र की संस्कृति––

हर एक व्यक्ति, जाति,समाज तथा राष्ट्र की अपनी-अपनी संस्कृति होती है । संस्कृति किसी भी चीज का शुद्ध और विकसित रूप है इसीकारण आदर्श है । समाज तथा देश के विकास को परखने के लिए उसकी संस्कृति की ओर नजर ड़ाली जाती है । संस्कृति पर ही देश की महानता को जाना जाता है । संस्कृति देश को अलंकृत करती है,उसे सजाती है,सँवारती है। हर एक को अपनी संस्कृति का अभिमान होता है और होना भी चाहिए , पर वह अभिमान स्वाभाविक होना जरूरी है ।संस्कृति संस्कार करती है तथा हमें सभ्य बनाती है । संस्कृति से व्यक्ति ,समाज तथा देश के इतिहास को जाना जाता है ।

3.14.1 **संस्कृति क्या है ?**

आजकल किसी समाज की वे सब बातें जिनसे ज्ञात होता है कि उसने आरंभ से अब तक कुछ विशिष्ट क्षेत्र में कितनी और किस प्रकार प्रगति की है उसे संस्कृति कहा जाता है । संस्कार

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 29 ।

करनेवालो तथा किसी वस्तु को शुद्‌ध रूप देनेवाली क्रिया या भाव संस्कृति है । आधुनिक हिंदी शब्दकोश में गोविंद चातक संस्कृति के बारे में लिखते हैं " किसी देश या जाति की सामाजिक, परम्परागत क्षमताओं और कलात्मक क्रिया कलापों का उनके जीवन में व्यवहृत रूप मनुष्य की आंतरिक मानसिकता उनके सौन्दर्यमूलक कार्यकलाप और अभिरूचियों का समाष्टि रूप यानी संस्कृति है ।"[1] अंग्रेजी में culture (कल्चर) का प्रयोग जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है उसी अर्थ में हिंदी में संस्कृति का प्रयोग होता है ।

आधुन्कि विद्‌वानों के मतानुसार संस्कृति सभ्यता का ही दूसरा अंग है । सभ्यता मुख्यतः आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्‌धियों से संबंधित है तथा संस्कृति अध्यात्मिक बौद्‌धिक और मानसिक सिद्‌धियों से संबंधित है। इस संस्कृति को कला कौशल के क्षेत्र की उन्नति ,सामाजिक रहन–सहन और परम्परागत योग्यताओं तथा विशिष्टताओं के आधार पर परखा जाता है ।सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक समृद्‌धि का मापदण्ड है और संस्कृति लोगों के आंतरिक और मानसिक उन्नति की पहचान ।

3.14.2 **भारतीय संस्कृति का आदर्श––**

भारतीय संस्कृति के इतिहास में भारतीयों ने कभी परकीयों पर आक्रमण नहीं किया । कभी किसी पर अन्याय नहीं किया किन्तु परकीय आक्रमण तथा अन्याय का डटकर मुकाबला जरूर किया है। भारतीय संस्कृति में अन्याय को भी सहन नहीं किया जाता । किन्तु भारतीय संस्कृति अहिंसा और शांति का प्रतीक है । इसीलिए भारत अपने राजकीय विस्तार के लिए सीमाओं के परे आक्रमण के लिए कभी प्रेरित नहीं हुआ ।उसने अपनी संस्कृति के विस्तार और विजय के लिए जरूर प्रयत्न किया है । कला अध्यात्मिक तथा बौद्‌ध विचारशक्तियों के द्‌वारा उसने पूर्व प्रदेश पर किया हुआ आक्रमण एवंविजय यह युद्‌ध के लिए नहीं तो वह शांति के लिए किया हुआ आक्रमण था । उसका मूल उद्‌देश्य अपनी संस्कृति का विस्तार था । संस्कृतिहीनजातियों के लिए भारतीय धर्म, स्थापत्य , कला, विचार, नीति का आदर्श उसने दिया है ।इसी भारतीय संस्कृति का समर्थन नाटककार विद्यालंकार जी ने अपने नाटकों में किया है ।उनके नाटक भारतीय संस्कृति की पहचान है । भारतीय संस्कृति के बारे में योगी अरविंद घोष जी का कथन है - "उपनिवेश बसानेवाले अभियानों की एक शृंखला भारतीय रक्त और

---

1 गोविंद चातक – आधुनिक हिंदी शब्दकोश , पृष्ठ – 596 ।

भारतीय संस्कृतिको इजियन सागर के द्विपों तक ले गयी परन्तु पूर्वीय और पश्चिमी दोनों तटों से जिन जहाजो ने प्रस्थान किया वे कोई ऐसे आक्रांताओं के जहाजी बेड़े नहीं थे जिनका उद्देश्य उन सीमांतवर्ती देशों को भारतीय साम्राज्य में मिला लेना हो बल्कि वे उन निर्वासितों या साहसिक कार्य करनेवालों के थे जो उस युग की संस्कृतिहीन जातियों के लिए भारतीय धर्म,स्थापत्य,कला,काव्य, विचार, जीवन तथा आचारनीति को अपने संग ले गए ।"[1] सांस्कृतिक प्रचार–प्रसार के इसी परम्परागत रूप को विद्यालंकार जी "रेवा " नाटक में उद्घाटित करते हैं ।

3.14.3 **संस्कृति का गौरवगान--**

भारतीय संस्कृति पुरातन, प्राचीन संस्कृति है। प्राचीन होने के कारण यह परिमार्जित एवं शुद्ध बनी हुई है । इसीकारण वह गौरव के पात्र बनी है । आज भी विदेशी लोग भारतीय अध्यात्मिक विचार, सामाजिक रीति–रिवाज, परम्परा , कला–कौशल की उन्नति, सामजिक रहन–सहन तथा परम्परागत योग्यताओं को आदर की दृष्टि से देखते हैं ।

" रेवा " नाटक के विदेशी युवक का भारत के मकरन्द के प्रति यह कथन यहाँ दृष्टव्य है --" मैं आपको आदर की दृष्टि से देखता हूँ । परन्तु यह प्रणाम मैंने आपको नहीं किया था । मेरा यह प्रणाम आपके द्वारा आपके महान देश के प्रति था ।"[2] विद्यालंकार जी भारतीय संस्कृति के आदर्श पहलू–त्याग,प्रेम ,अहिंसा , शांति, दान जो विश्व के लिए प्रेरणादायी हैं और भारत के लिए गौरवपूर्ण हैं उनकी याद दिलाते हैं । " अशोक " नाटक के आचार्य उपगुप्त के विचार भारतीय संस्कृति के आदर्श को व्यक्त करते हैं तथा गौरव के भी पात्र बने हैं । वे कहते हैं कि स्वार्थत्याग से बढ़कर इस दुनिया में दूसरा सुख हो ही नहीं सकता । आचार्य उपगुप्त के शब्दों में " देखो बेटी । देने में जो सुख है वह लेने में नहीं है ।माता अपने पुत्र के लिए, स्त्री अपने पति के लिए जो स्वार्थत्याग करती है उससे बढ़कर सुख जगत में और कहाँ मिलेगा ? हृदय की जिस कोमलतम अनुभूति का नाम "प्रेम " है वह सिर्फ " देना ही देना " नहीं तो और क्या है ? फिर भी कौन कह सकता है कि प्रेम से बढ़कर मीठी और सुखपूर्ण अनुभूति इस दुनिया में दूसरी भी है । प्रतिदान की यह प्रवृत्ति मनुष्य को उँचा बनाती है । तुम प्रतिहिंसा की बात करती हो शीला । प्रतिहिंसा किससे ? इस दुनिया में किसका अहंकार अक्षुण्ण बना रहा है ?किस मनुष्य के दिल में कोई दर्द नहीं है, कोई टीस नहीं है ?

---

1 श्री.अरविंद – भारतीय संस्कृति के आधार ,पृष्ठ – 433 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा , पृष्ठ – 72 ।

इस दुर्बल मनुष्य के प्रति प्रतिहिंसा की भावना रखने का अभिप्राय ही क्या है ? तुम अपने ज्ञान को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न करो । तुम्हे यह बात समझ आ जाएगी कि इसी दुखी दुनिया के घावों में मरहमपट्टी बन जाने में जो सुख है वह घाव लगाने में नहीं है ।"[1] आचार्य उपगुप्त के विचारदर्शन में भारतीय संस्कृति के सभी सांस्कृतिक आदर्श के पहलू प्रकट होते हैं ।

अन्याय के खिलाफ कड़ा संघर्ष करना आवश्यक मानते हुए नाटककार बताते हैं कि अन्यनय सहनकरना भी पापा है । ऐसे आदर्शवादी विचार भारतीय संस्कृति को गौरव के पात्र बनाते हैं । " रेवा " नाटक के पुण्ड़रीक के माध्यम से नाटककार कहते हैं –" मैं मानता हूँ कि साधारण दशाओं में लड़ना – भिड़ना अच्छी चीज नहीं है ।परन्तु ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है जब शांत रहना और अत्याचार सहना, संसार का निकृष्टतम पप बन जाता है और शस्त्र लेकर आततायी का विध्वंस कर देना महान पुण्य का कारण हो जाता है ।'[2] विद्यालंकार जी ने भारतीय संस्कृति की समन्वय पद्धति को यहाँ सष्ट कर दिया है । शस्त्रबल और शास्त्रबल में समन्वय ,शांति और संघर्ष में समन्वय प्रस्थापित कर दिया है । अन्यनय के विरूद्ध मुकाबला करना और शांति का संदेश इन दोनों में समन्वय प्रस्थापित किया है । दो परस्पर विरोधी शक्तियों को सँभालने का सामर्थ्य भारतीय संस्कृति में है । इसी कारण वह आदर्श बनी हुई है । संसार भर के संपूर्ण देश भारतीय संस्कृति की ओर आदर के साथ देखते हैं तथा भारतभूमि में अगले ज्नम में जन्म लेनेकी मनोकामना करते है । संपूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का भारी प्रभाव है परन्तु आज भारतीय संस्कृति की हालत चिंताजनक है इस बात को स्पष्ट करते हुए चोलराज के माध्यम से विद्यालंकार जी कहते हैं " ... संसार भर के संपूर्ण देशों पर भारतवर्ष का प्रभाव है । अन्य देश अभी तक हमें संसार का सर्वप्रथम देश समझे हुए हैं । परन्तु यहाँ भीतर–ही–भीतर सभी कुछ जर्जरित होता चला जा रहा है । यह परिस्थिति कब तक चलेगी । हमारी आन्तरिक दुर्बलता पर कब तक परदा पड़ा रह सकेगा । आखिर यह कब तक छिपा रहेगा कि हम लोगों में परस्पर आधारभूत एकता का तत्व तक नहीं है ? "[3] विद्यालंकार जी ने यहाँ अपनी सांस्कृतिक संवेदना को प्रकट करते हुए सांस्कृतिक दोषों को उजागर किया है ।

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार-अशोक, पृष्ठ – 86 ।

2 चंद्रगुप्त विद्यालंकार – रेवा, पृष्ठ – 45 ।

3 वही, पृष्ठ – 30 ।

विद्यालंकार जी ने भारतीय धर्म, समाज, संस्कृति, सभ्यता का आदर्श अपने नाटकों में प्रस्थापित करते हुए उनका गौरव गान किया है । उन्होंने बौद्ध धर्म के तत्वों को भी यहाँ स्पष्ट किया है । भारतीय संस्कृति शांति, अहिंसा, विश्वबंधुत्व ,प्रेम, त्याग, सेवा, दानप्रियता , ममता, स्नेहवत्सलता ,उदारता, परोपकारिता आदि का आदर्श सारे संसार को देती है । इसी आदर्श की प्रतिष्ठापना विद्यालंकार जी ने अपने नाटकों में की है । अखिल मनुष्य जाति का जीवन सुखमय ,शांतिपूर्ण और सुरक्षित बनाने तथा जीवन में चिरशांति ,स्थैर्य और विकास के लिए इन आदर्श सांस्कृतिक तत्वों की जरूरत वे बताते हैं ।

आज मानव जगत में उथल-पुथल और परिवर्तन की आँधी के परिणाम स्वरूप प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उखड़ने लगी है । क्योंकि आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य आधुनिक संस्कृति का बुरा असर पड़ रहा है । जिसके कारण भारतीय मानसिकता कमजोर पड़ गई है । विदेशी बिलकुल विपरीत संस्कृति के कारण भारतीय संस्कृति और सभ्यता नष्ट होने की संभावना निर्माण हो रही है ।यह बात चिंताजनक है क्योंकि आज भारत असभ्य और असंस्कृत होता जा रहा है, संवेदनाहीन होता जा रहा है ।असभ्य और असंस्कृत समाज या देश को कभी प्रतिष्ठा मिल नहीं सकती । बिना प्रतिष्ठा के व्यक्ति, समाज या देश का कुड़ा – कचरा बनने में देर नहीं लगती । योगी अरविंद के शब्दों में –" भारत को आज आधुनिक जीवन और चिंतन की विशाल बाढ़ का सामना करना पड़ रहा है, उस पर अन्य प्रबल सभ्यता, संस्कृति का आक्रमण हो रहा है जो उससे प्रायः ठीक उलटी है या कम से कम उसकी भावना से अत्यन्त भिन्न भावना द्वारा प्रेरित है ।"[1] विद्यालंकार जी इसी सांस्कृतिक आक्रमण का अनुभव कर रहे थे । वे इस स्थिति पर चिंतीत थे तभी उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक महत्त्व को अपने नाटकों में विशद किया । वे जानते थे कि भारतीय संस्कृति पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है । इसी कारण युवा पीढ़ी बिगड़ चुकी है । और यह अवस्था ऐसी ही रहीं तो आशंका है कि भारतीय संस्कृति सदा के लिए मटियामेट हो जाएगी । संस्कृति का विनाश हमारे लिए कितना खतरनाक साबित हो जाएगा इसकी कल्पना करना मुश्किल है । इसी अनुभूति की तीव्रता के कारण विद्यालंकार जी हमें भारतीय संस्कृति के प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं और अपने नाट्य साहित्य में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विशिष्ट मर्म एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हैं ।

---

1 श्री अरविंद – भारतीय संस्कृति के आधार , पृष्ठ – 457 ।

3.14.4 **संस्कृति और संघर्ष--**

जब दो संस्कृतियाँ आमने-सामने आती हैं तब उनमें संघर्ष होना स्वाभाविक बात है । विद्यालंकार जी के " रेवा " नाटक में भी दो संस्कृतियों का संघर्ष है । काम्बोज के राजकुमार यशोवर्मा एक सांस्कृतिक पक्ष के प्रतिनिधि हैं । वे शस्त्रबल से सांस्कृतिक विजय करना चाहते हैं । ठीक इसके विरूद्ध आचार्य पुण्ड़रीक का सांस्कृतिक पक्ष है जो शस्त्रबल की अपेक्षा शास्त्रबल से सांस्कृतिक विजय की कल्पना करते हैं । यशोवर्मा और जनार्दन के संवाद यहाँ दृष्टव्य हैं -- "
यशोवर्मा - ऋषि पुण्डरीक का कथन है कि शस्त्रबल से शास्त्रबल सदा श्रेष्ठ है ।
जनार्दन - तो इसमें गलती कहाँ है ?
यशोवर्मा - इसमें तो गलती उसी जगह पर आती है जहाँ राज्य का संचालन भी शस्त्र की बजाय केवल शास्त्र के बल पर करने का प्रयत्न किया जाता है ।"[1] यहाँ शस्त्र बल और शास्त्रबल के संघर्ष की चर्चा काफी महत्त्वपूर्ण है ।हर चीज का सही स्थान पर इस्तेमाल करना संयुक्तिक बताया गया है । दूसरा सास्कृतिक पक्ष आशाद्वीप के नागरिकोंका है । वे अपने को सांस्कृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ समझते हैं वे इसी सांस्कृतिक उच्चता के आड़म्बर में दूसरो स्स्कृति को छोटा ,नगण्य,हेय तथा महत्त्वहीन समझकर किसी से ज्ञान प्राप्ति की इच्छा न रखते हुए सीमित दायरे में कूपमण्डूक बनकर स्वयं को श्रेष्ठ अनुभव करते हैं । आशाद्वीप की रेवा एकांत में इसपर चिंतित है । वह सोचती है -- "..... हम लोग विश्वभर से पृथक है संसार से कही और किसी तरह का हमारा संबंध नहीं अपनी दृष्टि में हम लोग अपने को संसार का सबसे श्रेष्ठ निवासी गिनते हैं ।"[2] स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरे को हीन दृष्टि से देखनेवालों को यहाँ अज्ञानी बताया है । इसके ठीक विपरीत चौलराज और उसकी कन्या राजकुमारी इन्दिरा का पक्ष है जो भारत के बाहरी देशों से संबंध जोड़कर भी अपने पूर्वजों से प्राप्त महान संस्कृति के दीप को संसार के सभो देशों में प्रज्वलित करना चाहते हैं । वे अपनी सभ्यता , संस्कृति एवं कला के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न द्वीपों में विश्वप्रसिद्ध विद्वानों ,कुशल और प्रवीण शिल्पि तथा कलाकारों को भेजते रहते हैं ।इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए " रेवा " नाटक के चोलराज कहते हैं --" भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार किया जाए । भारत देश अन्य देशों से संम्बद्ध रहे । हम लोग फैलें ।"[3]

---

1 चंद्रगुप्त विद्यालंकार - रेवा, पृष्ठ - 33 ।
2 वही, पृष्ठ - 148 ।
3 वही, पृष्ठ - 30 ।

विद्यालंकार जी ने सांस्कृतिक संषर्घ में भारतीय संस्कृति के विशिष्ट मर्म एवं महत्त्व को प्रस्तुत किया है । अन्य संस्कृतियों से नाता जोड़ो और अपनी संस्कृति का विकास करो, उनका प्रचार–प्रसार करो । यह आदर्शवादी दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति का रहा है । शस्त्र बल के बजाय शास्त्रबल का ज्यादा उपयोग करना समाज, देश तथा विश्व के लिए हितकारक है । जहाँ आवश्यकता पड़े वही शस्त्र का प्रयोग करना चाहिए । अपनी संस्कृति पर स्वाभाविक अभिमान होना चाहिए नहीं तो मिथ्याभिमान के कारण अन्यों से घृणा करना गलत है । यही बोध सांस्कृतिक संघर्ष में नाटककार ने अपने नाटकों के जरिए दिया है । यही उनकी सांस्कृतिक संवेदना की पहचान है जो उनकी राष्ट्रीय संवेदना का ही एक अंग बनकर उद्घाटित हुई है । तात्पर्य यह कि विद्यालंकार जी के लिए राष्ट्रीय संवेदना सबसे अहम् बात है । अतः राष्ट्र की उज्ज्वल परम्पराओं से संबंधित सभी बातें उनके लिए आकर्षण का विषय है । राष्ट्र की मान्यताएँ आदर्श तथा संस्कृति इन सब के प्रति उनमें सजगता परिलक्षित होती है जिसके मूल मे उनकी राष्ट्रीय संवेदना आधारभूत है ।

निष्कर्ष––

किसी को कष्ट में देखकर मन में होनेवाला बोध, दुख, सहानुभूति या अनुभव ही संवेदना है । संवेदन से संवेदना होती है । राष्ट्र से संबंधित समस्याओं को अनुभूत करना ही राष्ट्रीय संवेदना है तथा उन समस्याओं से बोध लेकर उनमें कुछ सुधार करने के लिए प्रेरित होना ही राष्ट्रीय संवेदना–बोध है । समस्या हमारे देश की, समाज की तथा व्यक्ति की वेदना है, जिससे संवेदना प्रकट होती है । हर एक चीज का अभाव संवेदना का उगमस्थान होता है । चाहे वह चीज अर्थ का अभाव हो, मानवीयता का अभाव (अमानवीयता) हो, एकता, एकात्मता, राष्ट्रप्रेम का अभाव हो या संस्कृति और सभ्यता का अभाव हो, वहाँ संवेदना जन्म लेती है ।

विद्यालंकार जी ने अपने नाट्य साहित्य में देश की विविध समस्याएँ , अभाव, व्यथा तथा वेदना को समझकर उन्हें स्पष्ट कर दिया है तथा उन समस्याओं को सुलझाने के उपाय भी बतलाए हैं

राष्ट्र से संबंधित सभी चीजें राष्ट्रीय हैं, अतः राष्ट्रीयता , राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय एकता, एकात्मता ये राष्ट्रीय संवेदना के आधारस्तंभ हैं । विद्यालंकार जी के नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना इन सब के अभावों का मूल है । इन के अभावों के कारण देश हर बार संकट में आया है तथा उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है।यह अहसास भी एक राष्ट्रीय संवेदना ही है ।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी के नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना यत्र–तत्र–सर्वत्र दिखाई देती है । उनके नाटकों में राष्ट्रीय संवेदना जिन कारणों से दिखाई देती है वे कारण है उनका अपना देश के प्रति गहरा प्रेम और जनमानस में उसकी उपेक्षा तथा देश की विभिन्न समस्याएँ । अनेक समस्याओं के कारण देश जर्जर हो रहा है या यह समझो कि आजादी के बाद देश विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में जो समस्याएँ सामने आयीं हैं उन पर बहुत सारे लोगों का ध्यान नहीं गया है या गया भी हो तो उस पर कुछ ठोस उपाय किसी ने भी नहीं किये हैं । यह अनुभूति (संवेदना) विद्यालंकार जी को प्राप्त हुई थी । इस लिए उन्होंने नाट्य साहित्य के माध्यम से समस्याएँ , समस्याओं के कारण, अभाव और अभावों की पूर्ति तथा उपायों को भी व्याख्यायित कर दिया है ।

भारत के सामने जो समस्याएँ खड़ी हुई हैं वे हैं – राष्ट्रीयता का अभाव, प्रांतीयता की भावना, साम्प्रदायिकता ,भ्रष्टाचार, बेकारी ,बढ़ती हुई आबादी, नागरिकों की संकिर्ण मनोभावना, आस्थाहीनता तथा मूल्यहीनता । इन समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक है – विश्वबंधुता, अहिंसा, शांति और राष्ट्रीयता । इनकी प्रतिष्ठापना के लिए विद्यालंकार जी उपाय बताते हैं कि सरकारी मशीनरी के कल–पुर्जे पूरी तरह निर्दोष होन चाहिए, देश का शासनतंत्र अत्यंत मजबूत हो और देश की जनता जागरूक (संवेदनशील) रहे ।

विद्यालंकार जी ने अपने राजनीतिक नाटक ' न्याय की रात " में राष्ट्र की अनेक समस्याओं को स्पष्ट कर दिया है ।अशिक्षा, निरक्षरता और कमजोर स्वास्थ्य का शिकार हुई जनता तथा ऐसी परिस्थिति में हेमंत जैसे स्वार्थी नेता, सदानंद जैसे भ्रष्ट सरकारी अफसर जनता को धर्म, जाति, भाषा तथा प्रांत के नाम पर आपस में लड़वाते हैं और अपने स्वार्थ की पर्ति करते हैं ।ऐसे नेता और अफसर न देश का विचार करते हैं और नकिसीअन्य भले–बुरे का । परिणामतः आज देश की शांति,एकता , अखंड़ता तथा उन्नति में लाखों बाधाएँ आ पहुँची हैं । देश का धीरे – धीरे हर प्रकार से पतन हो रहा है । आज खुशामद, पक्षपात और तिकड़मबाजी का दौर चल रहा है ।जुगलकिशोर जैसे सुयोग्य व्यक्ति की कदर नहीं होती और अयोग्यों की पैसों के बलबूते तरक्की की जाती है । इसी कारण एक तरफ बेकारी आसमान छू रही है और दूसरी तरफ राष्ट्र का विकास तकरीबन ठप्प होता जा रहा है ।

अपने ऐतिहासिक नाटक ' अशोक " में नाटककार विद्यालंकार जी ने कर्तव्यशीलता का पाठ पढ़ाया है । युवराज सुमन राजनैतिक कर्तव्य को व्यक्तिगत चाह से ऊपर की चीज मानता है।नाटककार ने यही आदर्श आज के स्वार्थांध राजनीतिक नेता लोगों के सामने रखा है ।उनके अनेक पात्र आदर्शवादी

मिलते हैं ।हृदयपरिवर्तन, कर्तव्यपरिवर्तन, कर्तव्यशीलता , आत्मबलिदान और राष्ट्रप्रेम की भावना ने पूरे नाटक को राष्ट्रीय संवेदना से ओतप्रोत और आदर्शवादी बनाया है । यह आज के नेता, समाजसेवक अफसर और देश के नागरिकों के लिए प्रेरणादायी है ।

ऐतिहासिकता को आधार बनाकर लिखे गये "रेवा " नाटक में भारतीय संस्कृति का गौरवगान किया है । मकरंद , गोविंद तथा इंदिरा आदि भारतीय संस्कृति के प्रतीक पात्र हैं । इनके माध्यम से भारतीय संस्कृति का आदर्शवादी दर्शन प्राप्त होता है । इसमें स्वार्थत्याग, आत्मबलिदान तथा कर्तव्यशीलता का आदर्श दिखाया है । महारानी राजकुमारी रेवा जनहित के लिए स्वहित को त्याग देती है । यह आदर्श आज के राष्ट्रीय शासनकर्ताओं को प्रेरणादायी है ।

विद्यालंकार जी के नाटकों में कर्तव्यशीलता , आत्मबलिदान और हृदयपरिवर्तन की भावना ने देश के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । उन्होंने अपने नाटकों में भ्रातृप्रेम , पितृप्रेम, स्वाभिभक्ति , मनुष्यप्रेम, देशप्रेम तथा सेवाभाव आदि द्वारा पूरे भारतवर्ष में प्रेम और शांति का आदर्श स्थापित कर राष्ट्र की उन्नति का बंद हुआ मार्ग खुला कर दिया है । निष्कर्षतः उनके नाटक राष्ट्रीय संवेदना से परिपूर्ण हैं ।